Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 3 | Issue 3 | (July - September 2026)

लाल पसीना उपन्यास में भारतीय गिरमिटियां मज़दूर: संघर्ष से मुक्ति की ओर

डॉ. पलाशी बिस्वास
सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, गोखले मेमोरियल गर्ल्स कॉलेज, कोलकाता

शोधसार

पसीना श्रम का प्रतीक है। पसीने के साथ जब लाल युक्त हो जाता है तब उसका अभिप्राय कठोर श्रम से होता है। लाल पसीना उपन्यास अभिमन्यु अनत द्वारा लिखा हुआ एक कालजयी महाकाव्यात्मक प्रवासी हिन्दी उपन्यास है। यह उपन्यास मॉरीशस की धरती पर भारतीय गिरमिटियां मज़दूरों के साथ घटनेवाली व्यथा-कथा को बयां करता है। मॉरीशस की कठोर पथरीली भूमि को भारतीय अनुबंधित मज़दूरों ने अपनी अथक मेहनत और परिश्रम से तथा उस भूमि की मिट्टी में अपने पसीने की बूंदों को मिलाकर किस तरह से उर्वर बनाया लाल पसीना की कथा उन्हीं घटनाओं पर आधारित है। बंधुआ मज़दूरों पर होने वाली अमानवीय यातनाएँ और उन यातनाओं को सहते हुए मज़दूरों में उत्पन्न होने वाली प्रतिरोध की भावना को जगाकर सिर्फ शारीरिक गुलामी ही नहीं मानसिक गुलामी से भी उनकी मुक्ति की कामना की गई है। पहली पीढ़ी के मज़दूरों में रघुसिंह है जो जहाज़ में लदकर सोने के लालच में मारिच देश में आता है। इस पीढ़ी के मज़दूर चुपचाप यातनाएँ सहकर बेगारी करते हैं। रघुसिंह का बेटा किसन दूसरी पीढ़ी का नवयुवक है जो अपनी गुलामी को देखकर बेचैन है; उसकी बेचैनी ही उसके भीतर प्रश्न बनकर उभरती है। सिपाही कुंदन से प्रभावित होकर उसके भीतर सामुदायिक तथा संगठन की भावना जगती है। गुलामी से मुक्ति पाने के लिए किसन आजीवन संघर्ष करता है और अंत में गोरों के हाथों गोली लगने से उसकी मौत हो जाती है। किसन का बेटा मदन तीसरी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। इनकी स्थिति पहले से थोड़ी बेहतर होने पर भी शारीरिक तथा मानसिक यातनाएँ कम नहीं होती हैं। वे खेत के मालिकों के षड्यंत्रों तथा प्राकृतिक आपदाओं के कारण पीड़ित होते रहते हैं। मदन भी उनके षड्यंत्रों के कारण अपनी आँखों की रोशनी को खो बैठता है। अतः अभिमन्यु अनत ने लाल पसीना में विदेशी धरती पर भारतीय मज़दूरों द्वारा असंख्य अमानवीय यातनाएँ सहते और शोषण के विरुद्ध मुक्ति के लिए संघर्ष करते दिखाया है।

बीज शब्द- लाल, पसीना, प्रवासी, गिरमिटिया, मारिच, मॉरीशस, सोना, गन्ना, सर्वहारा, पूंजीपति, शोषण, संगठन, संघर्ष, मुक्ति।

शोधालेख

गिरमिटियां मज़दूर वे भारतीय मज़दूर थे जिन्हें ब्रिटिश उपनिवेशवादियों द्वारा अनुबंध के आधार पर मॉरीशस में गन्ने, रबड़ तथा चाय के बागानों में काम करवाने के लिए झूठे वादे तथा धोखाधड़ी से ले जाया गया था। वे मज़दूर पढ़े-लिखे न होने के कारण अंग्रेज़ी के एग्रीमेंट शब्द का उच्चारण सही ढंग से न करके गिरमिट कहते थे और वहीं से वे गिरमिट मज़दूर कहलाए और धीरे-धीरे उनके लिए गिरमिटियां मज़दूर शब्द प्रचलन में आ गया। गिरमिटियां मज़दूर दास नहीं थे लेकिन उनको दास की अगली कड़ी माना जा सकता है। इन मज़दूरों की स्थिति दासों जैसी ही थी। उनमें अगर कोई फर्क था तो सिर्फ मज़दूरी के लिए मेहनताने का था और यह मेहनताना भी अत्यंत कम और सही समय पर उनको नहीं दिया जाता था।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश कई देशों में साम्राज्य स्थापित कर चुके थे। वे व्यापारी थे। उनकी दृष्टि पूंजीवादी थी। उस समय उनके उपनिवेशों में गन्ना, रबड़ तथा चाय का अच्छा उत्पादन होता था। इस कार्य के लिए उन्हें प्रचुर मात्रा में मानव श्रम की आवश्यकता होती थी। यही कारण था कि अफ्रीका से वे गुलाम खरीदकर अपने उपनिवेशों में बेगारी करवाते थे। सन् 1814 में मॉरीशस में ब्रिटिशों का कब्ज़ा हो गया था। उस समय इस द्वीपीय देश मॉरीशस में चीनी का अच्छा उत्पादन होता था। चूँकि मॉरीशस व्यापार का केन्द्र था और वहां गन्ने के उत्पादन के लिए उपयुक्त वातावरण भी था। इसीलिए अंग्रेज़ कम्पनियों ने वहीं पर गन्ने की खेती तथा कारखानों की स्थापना की। सन् 1833 में द स्लेवरी एवोलियेशन एक्ट पारित होने पर दास प्रथा पूरी तरह से समाप्त हो गई, जिससे मज़दूरों की भारी कमी हो गई थी। मज़दूरों को पाने के लिए अंग्रेज़ों ने एक नया उपाय निकाला जिसे द ग्रेट एक्सपेरिमेंट कहा गया। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक लगभग पूरे भारत में अंग्रेज़ों का कब्ज़ा हो गया था और देशी राजे-रजवाड़े आपस में लड़ रहे थे और भारत के आम आदमी तथा गरीब किसान उनके बीच में पीसे जा रहे थे। इसी समय भयंकर अकाल ने उनकी स्थिति को और भी दयनीय बना दिया था। इसी मौके का फायदा उठाकर उन्होंने भारत के गरीब तथा अकाल पीड़ित किसानों पर नया एक्सपेरिमेंट किया। ये भारतीय भूख तथा कर्ज़ से मुक्ति पाना चाहते थे। इन भारतीयों को झूठे वादे और लोभ देकर एग्रीमेंट पर हस्ताक्षर करवाए गए। 10 सितम्बर 1834 को कलकत्ता से एटलस नामक जहाज़ पहली बार छत्तीस बिहारियों को लेकर मॉरीशस के लिए निकला और 2 नवम्बर 1834 को मॉरीशस के अप्रवासी घाट पर उन मज़दूरों को उतारा गया। इन छत्तीस भारतीयों को एंटोनेट शुगर एस्टेट में काम पर लगवाया गया था। सन् 1834 से सन् 1910 तक लगभग पाँच लाख भारतीयों को मॉरीशस में ले जाया गया। एग्रीमेंट के अनुसार पाँच साल तक मॉरीशस में काम करके मज़दूरों के वापस भारत आने की बात हुई थी। पुरुषों के लिए पाँच रुपये और महिलाओं के लिए चार रुपये प्रतिमाह वेतन तय किया गया था। लेकिन दोनों मामलों में ही इनके साथ धोखा हुआ। सन् 1860 में एग्रीमेंट से पाँच साल बाद भारत वापस लौटने की बात को भी हटा दिया गया। वहीं दूसरी ओर बाकी देशों में भी चीनी का उत्पादन बढ़ने पर मॉरीशस में चीनी की मांग घट गई थी। सन् 1878 में लेबर लॉ पास होने पर वेतन समय पर दिया जाने लगा। लेकिन 19वीं शताब्दी में उन मज़दूरों ने अपने प्रति होने वाले अमानवीय शोषण तथा पाबंदियों के खिलाफ आवाज़ उठाना शुरू किया, परिणामस्वरूप सन् 1917 में गिरमिटियां मज़दूरों को अपने देश वापस लौटने की पुनः अनुमति मिल गई थी।

लाल पसीना की कथावस्तु में मॉरीशस में प्रथम भारतीय मज़दूरों के आगमन से सन् 1900 ई. तक की दासता सिमटी हुई है।[1] इस उपन्यास में प्रवासी भारतीय मज़दूरों एवं उनकी संतानों की व्यथा-कथा के साथ उनके संगठन-विघटन, त्याग-बलिदान व आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन किया गया है।[2] लाल पसीना में उपनिवेशवादियों के छल कपट से पलायन करके मारिच देश में विस्थापित होने वाले भारतीय गिरमिटियां मज़दूरों और उनकी कई पीढ़ियों की बेबसी तथा बदहाली चित्रित हुई है। ब्रिटिशों की गुलामी और भारतीय रियासतों के अत्याचारों के शिकार भारतीय किसान अकाल से पीड़ित होकर दाने-दाने की मोहताज होकर भूखमरी के शिकार हो गये और कर्ज़ के भार से दब गये थे। ऐसे में जब इन श्रमिकों को यह लालच दिया गया कि मारिच देश में हर पत्थर के नीचे सोना मिलता है। उस देश में जो भी जायेगा मालामाल होकर आयेगा और अपने इस बदहाल जीवन को सुधार पायेगा। उपनिवेशवादियों की इस चालाकी से भोले-भाले भारतीय लोग अनजान थे। पाँच वर्ष के अनुबंध से अनुबंधित होकर ये सभी सोने की तलाश में तथा अपने बेहतर भविष्य की आशा लिए मारिच देश की ओर निकल पड़े। लेकिन वहां पहुंचकर उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि एग्रीमेंट के नाम पर उनके साथ धोखा हुआ है। अपने वतन से दूर वे उस अनजाने वीरान द्वीपीय देश में पहुंचे थे जहां से वापस आने का एकमात्र साधन समुद्री जहाज़ ही था जिस पर ब्रिटिशों का ही नियंत्रण

था। ऐसे में उनका वहाँ से वापस आना तो दूर वे उसकी कल्पना करने से भी डरते थे। जिन लोगों ने यह दुस्साहस कभी कर भी दिया था वे या तो पकड़े गये और कोड़े खाए या फिर सामने उफनते हुए समुद्र को देखकर भयभीत होकर पीछे हट गए क्योंकि इतनी जलराशि को लाँघ पाना उनके लिए असंभव था। उपन्यास में अभिमन्यु अनत ने ऐसी ही एक घटना का वर्णन किया है जिसमें आरा जिले से मॉरीशस के बंदरगाह तक पहुंचने तक जहाज में सवार होने से पहले किसन के पिता रघुसिंह तथा जतन ने गोरों के ठेकेदारों को यह कहते हुए सुना कि "चलो मारिच के देश चलो। अकाल से पीड़ित उन लोगों ने पूछा कि कहां है मारिच? क्या है वहां? तो उनसे कहा गया वह बहुत दूर नहीं। वहां कोई भूखा नहीं मर सकता। अनाज बेशुमार है वहां। रूपया और सोना तो हर पत्थर के नीचे है। जिन चीज़ों के लिये तुम लोग यहां तड़प रहे हो, वहां ये ही चीज़े तुम लोगों के लिये तड़प रही है।"[3] यह कितना बड़ा धोखा था उन भारतीयों के प्रति जो वहाँ पर गए वही समझ पाए थे।

गिरमिटियां मज़दूरी प्रथा दास प्रथा की अगली कड़ी थी। इन मज़दूरों की स्थिति दासों जैसी ही थी। इन मज़दूरों को मशीन मात्र समझा गया। हाड़-मांस के ये मानव मशीनों की तरह दिन भर तेज़ धूप में बिना रुके गन्ने के खेतों में काम करते रहे। कभी अगर भूख-प्यास, धूप तथा गर्मी के कारण रुक जाते तो कम्पनी द्वारा निगरानी में लगाए हुए सरदारों के कोड़े और बाँस की बौछारों से उनकी पीठ घायल हो जाती। अगर कोई प्रश्न करने की हिम्मत करता तो उसे और कठोर दण्ड मिलता और वेतन भी काट लिया जाता था। कठोर यातनाओं तथा वेतन कटने के डर से ये मज़दूर चुप्पी साधे यंत्रवत् काम करते रहते थे। उपन्यास के नायक किसन सिंह के मन में अपने लोगों के साथ होने वाले अन्याय को देखकर हमेशा प्रश्न जगता रहता था लेकिन उन प्रश्नों का कोई उत्तर उसके पास नहीं था। जब भी किसन प्रश्न करता तो उसके पिता उसके मुँह पर हाथ रखकर कहते कि दास प्रश्न नहीं करते, आज्ञा का पालन करते हैं। इस पर किसन का प्रश्न होता आखिर हम दास क्यों? किसन के भीतर प्रश्नों के जगने का सिलसिला निरंतर चलता रहता है। वह जब अपने आस-पास अपने लोगों के जीवन में घोर अभाव और पीड़ा को देखता है तो उसे लगता है कि "वे लोग अपने प्रश्न करने की ताकत को भूला दिया है। उनके अभावग्रस्त जीवन का यही कारण था कि अपनी जीभ को भीतर चिपकाकर वे चुपचाप दारूण दण्डों को झेलते आ रहे थे।"[4] अभावों तथा कठोर यातनाओं ने उन मज़दूरों के कंठ को मूक बना दिया था। जीवित रहने के लिए वे उस विषम परिवेश में यंत्रवत् कार्य करते रहे। सन् 1834 में एग्रीमेंट की बुनियाद पर जिन छत्तीस बिहारियों के जत्थे को धोखे से मॉरीशस की बंजर भूमि में लाया गया था उन मज़दूरों के अदम्य साहस, अथक परिश्रम तथा खून-पसीने ने उस भूमि को कृषि योग्य बनाया।

भारत से सोने के लालच में लाए गए भारतीय मज़दूरों को जिस उत्पीड़न और प्रताड़ना का सामना करना पड़ा, इस उपन्यास का उपजीव्य वही है।[5] सन् 1834 में मॉरीशस में पहली बार भारतीय गये बंधुआ मज़दूर के रूप में। अपनी नियति से जूझते। घर से हज़ारों मील दूर निर्दयी, आतंकी, खेतों के मालिकों के चंगुल में। उनकी स्थिति गिद्ध के हाथों आई चिड़िया से कम नहीं थी। एक दस्तावेज में उन्हें एक वर्ष में दी जाने वाली सुविधाओं का उल्लेख है- एक धोती, एक कमीज, दो टोपी, दो कम्बल, पाँच रुपये वेतन।[6] अमानवीय अत्याचार और दमन सहना उनकी नियति बन गई थी। चिलचिलाती धूप और गर्मी में गन्ने के खेतों में काम करना, थोड़ी सी पीठ सीधी की नहीं कि पीठ पर कोड़े बरसना और बांस की मार सहना आम बात थी। बीमार पड़ना भी मना था। कुली बीमार पड़कर भी घर पर नहीं रह सकता था। एक बार किसन के पैर में मोच आ जाने पर वह काम पर नहीं गया तो उसके चार दिन का वेतन काट लिया गया। छोटी-छोटी बातों पर या किसी के प्रश्न पूछ लेने पर कठोर यातनाएँ दी जाती थीं या जेल भेज दिया जाता था। मंगरू को इसलिए जेल जाना पड़ता है क्योंकि वह ईसाई धर्म को अपनाने से इनकार कर देता है।

बंधुआ मज़दूरों के साथ पशुओं का सा व्यवहार किया जाता था। मालिकों के पालतू पशुओं की स्थिति उन मज़दूरों से बेहतर थी। एक बार किसन को मालिक अपने कुत्ते को नदी में नहलाने के लिए देता है। नदी के उस विशेष ठौर पर जहां साहब के कुत्ते को नहलाया जाता था, वहाँ किसी आदमी को नहाने की इज़ाजत नहीं थी। किसन एक दिन वहीं पर नहाते हुए पकड़ा जाता है तो सज़ा के तौर पर उसे सात कोड़े मिलते हैं चूँकि उसने प्रश्न किया था इस बात पर उसे तीन कोड़े और सहना पड़ता है। मनुष्य के साथ हुए इस व्यवहार पर व्यंग्य करते हुए किसन एक नया गीत बाँध लेता है। उसके द्वारा बनाए हुए गीत को बस्ती के कुछ लोग गुनगाते हैं। इसकी भनक जब गोरे मालिक को पड़ती है तो उसके लिए भी उसे चंद कोड़े और सहने पड़े। किसन अपने मालिक के व्यवहार पर व्यंग्य करते हुए गाता है,

'ओ रे रे मूसे लँगड़वा के राज में

कुतवन के बड़ा भाग बा

दुम हिलावल से ओकर त बनल बात बा

मूसे रेतों के राज में

गोर चाटे के मोल बा

आदमी बा कुत्ता। कुत्ता सरदार बा

ओ रे रे मूसे'

खेतों में काम करते वक्त मज़दूर सरदारों से बचते हुए अक्सर किसन द्वारा बाँधे हुए गीतों को गाते-गुनगुनाते रहते हैं। एक दिन गौतम के पिता गन्ना काटते समय किसन द्वारा बनाए हुए एक नए गीत को गुनगुनता है,

'रामजी की ईख की तू चूस लेईली मिठसवा,

हमरो खातिर छोड़ गइले सीठिया हो रामा।'

इस बात पर उसे गाली खानी पड़ती है और सज़ा भी मिलती है। ईख से लदी गाड़ी से बैल को हटाकर उसे बैल की जगह बाँध दिया जाता है और चाबुक की आवाज़ के साथ उससे गाड़ी को आगे खिंचवाया जाता है। उसने गन्ना काटते समय जो गाना शुरू किया था, उसको दोहरवाते हुए उसके शब्द-शब्द पर दस-दस कोड़े लगवाए जाते हैं। गौतम वहीं पर खेत में गन्ना काट रहा होता है। अपने पिता को अश्लील गाली खाते और ज़लील होते देखकर उसका खून खौल जाता है। उसका शरीर काँपने लगता है। अनत लिखते हैं वह कंपन क्रोध से नहीं बल्कि बेबसी वाला था। वह अपने पिता को ज़लील होते देखकर भी कुछ नहीं कर सकता था। गौतम कुछ समझ पाता कि उस पर पीछे से एक सरदार वार करता है और दो और सरदार उसे गन्ने के ऊपर से घसीटते हुए पहाड़ी से घायल अवस्था में नीचे फेंक देते हैं। गिरमिट मज़दूर उनके लिए एक पशु के समान थे। जिनका वे मनमाने ढंग से शारीरिक शोषण किया करते थे।

स्त्री का अबलापन उसकी कमज़ोरी एवं निरीहता को चिन्हित करता है लेकिन स्त्री के धीरज की शक्ति जब रौद्र रूप लेती है, जब उसका क्रोध उफान पर होता है, तब अपने संहारक रूप में दुर्गा बन जाती है।[7] एक गिरमिट स्त्री दोहरे शोषण की शिकार होती रही है। घर का काम पूरा करके दिन भर धूप में गन्ने के खेतों में काम करना और मालिकों की हवस का शिकार होना उनकी नियति बन गई थी। नारी का यौन शोषण नित्य कर्म बन गया था। नंदू को उसकी लड़की

रेखा को साहब की कोठी पर ले जाने को कहा गया था। बस्ती वाले तथा मुखिया लक्ष्मन सिंह भी बेबस थे क्योंकि उन मालिकों की शक्ति और दमन नीति से वे भली-भाँति परिचित थे। पहले भी जुबैदा, भगवतिया, तांगेची साहब की कोठी में जा चुकी थीं। यौन शोषण की शिकार ये लड़कियाँ नदी में डूबकर आत्महत्या कर लेती हैं। लेकिन रेखा को किसन बचा लेता है। लक्ष्मन सिंह के कहने पर वह उसे रात के अंधेरे में सरदारों और आदमखोर कुत्तों से बचते-बचाते हुए अपने घर ले जाता है और उससे विवाह कर लेता है। सिर्फ यौन शोषण ही नहीं अंग्रेज़ उन मज़दूर औरतों के प्राण लेने से भी नहीं कतराते थे। एक गोरा एक गर्भवती महिला को इसलिए गोली मार देता है कि उस महिला का कुसूर बस इतना था कि उसने अपने पति के प्रति होने वाले शोषण का विरोध किया था। कोल्हू चलवाने के बाद जब उसके पति को पेड़ से लटका दिया गया था। तब उस औरत ने घृणा और हताशा में उस गोरे पर थूक दिया था। उसके साथ उसके गर्भ में पल रहे बच्चे की भी हत्या कर दी जाती है। यहां जीवन जीने के अधिकार को छीनते हुए दिखाया गया है।

लाल पसीना में मानव अधिकारों का घोर हनन होते दिखाया गया है। मज़दूरों को काम करते वक्त अगर सज़ा मिलती थी तो उनको प्रश्न पूछने का कोई हक नहीं था। बच्चों के लिए शिक्षा और खेलने की अनुमति नहीं थी। भारतीय मज़दूरों को मंदिर बनवाने, पूजा-पाठ, विवाह करवाने तथा पर्व-त्यौहार मनाने की इज़ाजत नहीं थी। जबरन धर्म परिवर्तन करवाया जाता था और जो नहीं मानते थे उन्हें जेल की यातनाएँ सहनी पड़ती थीं। जेल में कैदियों को ज़हर देकर मार दिया जाता था। कैदी रूपलाल का कसूर यह था कि उसने अधपका पनछोछर भात रसोइये के मुँह पर मारा था और जरासंध (सिपाही) के गाल पर थप्पड़ मारते हुए कहा था, "एक दिन तोर पारी, एक दिन मोर पारी, आज भैया पारी-पारी।"[8] स्वास्थ्य संबंधी कोई सुविधा उन मज़दूरों तथा कैदियों को प्राप्त नहीं थी। घाव पर दवाई की जगह नमक लगाना, अस्पताल में कैदियों का इलाज न होना और अधपका मक्के का भात खिलाकर कैदियों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाई जाती थी। इस प्रकार पूंजीवादी व्यवस्था में भारतीय गिरमिट मज़दूरों पर अमानवीय शोषण तथा अभावग्रस्त जीवन ने उनकी वास्तविक पहचान के लिए संकट पैदा कर दिया था।

लाल पसीना उपन्यास में सन् 1834 से लेकर सन् 1900 ई. तक मॉरीशस में भारतीय मज़दूरों के परिश्रम, शोषण और शोषण से मुक्ति पाने के लिए संगठित होने के प्रयासों को चित्रित किया गया है। जो मज़दूर दिन भर कड़ी मेहनत करके खेत के मालिकों को समृद्ध करते थे उनको ही खाने के लिए ढंग का अनाज भी नहीं दिया जाता था। कभी चावल में धान और खुद्दियों की मात्रा अधिक होती थी तो कभी कीड़े लग चुके सड़े हुए चावल दिए जाते थे। बिना खाए-पिए भूखे पेट वे मज़दूर अपना पसीना बहाकर मीठे गन्ने को उगाते थे। उस गन्ने की पूरी मिठास खेत के मालिकों को मिलती थी। गरीबों के खून-पसीने से उगाए गए गन्ने से चीनी तथा गुड़ बनते, जिससे खेतों के मालिक और अमीर हो जाते और मज़दूरों की स्थिति बद से बदतर होती रहती थी। इस आर्थिक विषमता को देखकर किसन के मन में यही प्रश्न जगता रहता है कि खेतों में पसीना हम बहाकर गन्ना उगाते हैं तो उससे मिलने वाले फायदे सिर्फ मालिकों को क्यों? जब कुंदन चाचा किसन से इस विषय में यह कहते हैं, ये ईख के कारखाने सातों दिन सातों रात चलते रहते हैं...हम सातों दिन सातों रात ईख काटते रहते हैं... सातों दिन सातों रात हम खून-पसीना एक करके शक्कर पैदा करते रहते हैं...चीनी मीठी होती है...फिर भी....सातों दिन हमें कड़ुवाहट की बूंदें मिलती हैं।[9] तब कुंदन चाचा की उन बातों से किसन के भीतर इस सामाजिक तथा आर्थिक भेदभाव के प्रति प्रतिरोध की भावना जगती है। उसी दिन वह अपने आप से पूछता है, गन्ने रोज़ काटे जाते हैं। कारखाने रोज़ चलते हैं। एक दिन गन्ना न कटे, कारखाना न चले तो....एक दिन....दो दिन....तीन दिन....वह न हो जो मालिक चाहता है तो क्या हो जायेगा? उसका उत्तर वह स्वयं ही ढूँढ़ता है, गोलियाँ चल जाएँगी हमारे ऊपर? ऐसा करके तो देखा जाए?[10] इस प्रकार किसन के भीतर शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध की भावना जगती है। कुंदन चाचा के प्रभाव से किसन के मन में अपने समुदाय के अधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न होती है।

किसन कुन्दन चाचा के मार्ग-दर्शन में सात बस्तियों के मज़दूरों को एकत्रित करने में सफल होता है। पहली बार मज़दूर संगठित होकर मालिकों के खेतों में काम करने से मना करने का साहस दिखाते हैं। सातों बस्तियों के सात प्रतिनिधि मिलकर रेमों साहब से मिलकर अपनी शर्तों को रखते हुए कहते हैं, हमारी पहली मांग यह है कि हमें आदमी समझा जाए। बैल नही। हमारी मेहनत के बाद अगर हमारी पीठ नहीं थपथपाई जा सकती तो बदले में बांसों की बौछार भी हमें नहीं चाहिए।[11] दूसरी मांग है, हम बस्तियों के भीतर कैदियों की तरह नहीं रह सकते। हमें उस घिरावट से बाहर आने जाने की स्वतंत्रता हो।[12] तीसरी मांग, हम स्वतंत्र रूप से अपनी पंचायत और बैठक लगा सकें। पूजा-पाठ कर सके।[13] चौथी मांग, हम अनाज़ और डॉक्टर से वंचित नहीं रहना चाहते।[14] पांचवीं मांग, हमारी बहनों और बहु-बेटियों का आदर होना चाहिये। पिछले महीनें एक बस्ती में चार लड़कियों ने आत्महत्या कर ली थी।[15] उपनिवेशकालीन स्त्रियों के विषय में प्रभा खेतान कहती है, उपनिवेश के खिलाफ उसका संघर्ष आत्म संघर्ष भी है।[16] उसी आत्मसंघर्ष से जूझते हुए स्त्रियाँ या तो पतित हुईं या फिर लज्जा और घृणावश आत्महत्या करने को विवश हुईं। अनत जी किसन के माध्यम से स्त्रियों के सम्मान और मुक्ति की पहल करते हैं। उनकी अंतिम मांग थी, "हमारे बच्चों को पढ़ने-लिखने का अवसर दिया जाये।"[17] इस प्रकार पशुओं जैसे जीवन से छुटकारा पाकर मनुष्य जैसा जीवन जीने के लिए उन गिरमिटियां मज़दूरों में सामूहिक संगठन की भावना का जगना उनकी मुक्ति के मार्ग का पहला द्वार था जो इन मूलभूत मानव अधिकारों के बगैर मिल पाना असंभव था जिनकी मांगें किसन के नेतृत्व में की गई थीं।

राजनीतिक तथा सामाजिक जागृति दूसरी पीढ़ी के मज़दूरों में ही देखी जा सकती है, जिसकी अगुवाई किसन करता है। इसमें संगठित होकर मालिकों से लड़ने और अपने लिए बैठका तथा मंदिर बनाना, किसन और रेखा का पहली बार हिन्दू रीति से विवाह संपन्न होना, रात को रामायण और हनुमान चालीसा का पाठ तथा भजन-कीर्तन करना, होली का त्यौहार मनाना यह दर्शाता है कि वे अब गोरों की गुलामी का विरोध करने लगे थे। विषम परिस्थितियों में भी उनमें अपनी सामाजिक तथा सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने का साहस अपने आप में अतुलनीय था। किसन की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र मदन ने अपने समुदाय की मुक्ति के लिए संघर्ष जारी रखा। इस प्रकार गिरमिटियां मज़दूरों का मुक्ति-संग्राम कई पीढ़ियों से होकर गुज़रा है।

निष्कर्ष

लाल पसीना अभिमन्यु अनत द्वारा रचा गया वह ऐतिहासिक महाकाव्यात्मक उपन्यास है जो तथाकथित भारतीय गिरमिटियां मज़दूरों के कारुणिक जीवन को नज़दीक से देखने तथा समझने के लिए आधार प्रदान करता है। इस उपन्यास में गिरमिटियां मज़दूरों की जीवन शैली, दिनचर्या, उन पर होने वाले अमानवीय अत्याचार, बेबसी, गरीबी, भूखमरी, हताशा, शारीरिक तथा मानसिक शोषण का बारीकी से वर्णन किया गया है। अपने वतन से दूर किसी पराए देश में सोना तथा बेहतर जीवन की तलाश में गए उन मज़दूरों का जीवन नरक के समान हो जाता है। उन पर लगी पाबंदियाँ उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान को मिटाने की रही हैं। पूंजीपतियों द्वारा दी गई अमानवीय कठोर यातनाओं ने उन मज़दूरों के भीतर क्रांति की भावना जगाकर उनको एक सूत्र में बाँधकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की चेतना जगाई है। अपने हक के लिए संघर्ष करना, संगठित होना गिरमिटियां मज़दूरों की बहादुरी को दर्शाता है। विषम परिस्थितियों में सर्वहारा असंगठित मज़दूरों में संगठन की भावना का उदय होना और रात के अंधेरे में पूंजीपतियों के शोषण के विरोध के लिए योजनाएँ बनाकर इन मज़दूरों की कोशिश शारीरिक गुलामी के साथ-साथ मानसिक गुलामी को तोड़ने की रही है। कठिन परिस्थितियों में भी इन मज़दूरों ने अपनी भारतीयता की पहचान और अस्तित्व को बनाए रखा है। इस प्रकार अभिमन्यु अनत ने अपने कालजयी उपन्यास लाल पसीना में मॉरीशस के

गिरमिटियां मज़दूरों की व्यथा-कथा के माध्यम से उनकी छटपटाहट, जीवन-संघर्ष को दिखाते हुए उनके लिए मुक्ति-मार्ग की कामना की है।

संदर्भ-सूची

1. श्रीधर, प्रो. प्रदीप, 2018, प्रवासी हिन्दी साहित्य के विविध आयाम, कानपुरः विद्या प्रकाशन, पृष्ठ-संख्या- 66
2. वही, पृष्ठ- संख्या- 66
3. अनत, अभिमन्यु, 2019, लाल पसीना, दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-संख्या- 69
4. वही, पृष्ठ- संख्या- 39
5. मिश्र, डॉ. भगवतीशरण, 2010, हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार, दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्ज़, पृष्ठ-संख्या- 292
6. जोशी, अनिल, 2018, प्रवासी लेखन नयी ज़मीन, नया आसमान, नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन, पृष्ठ-संख्या- 42
7. कुमार, अनिरूध्द, सिंह कुमार, अनिल, 2012, स्त्री साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स, पृष्ठ-संख्या-161
8. अनत, अभिमन्यु, 2019, लाल पसीना, दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-संख्या- 34
9. वही, पृष्ठ- संख्या-133
10. वही, पृष्ठ- संख्या-133
11. वही, पृष्ठ- संख्या-149
12. वही, पृष्ठ- संख्या-149
13. वही, पृष्ठ- संख्या-149
14. वही, पृष्ठ- संख्या-149
15. वही, पृष्ठ- संख्या-149
16. खेतान, प्रभा, उपनिवेश में स्त्रीः मुक्ति कामना की दस वार्ताए, दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-संख्या- 1
17. अनत, अभिमन्यु, 2019, लाल पसीना, दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-संख्या- 150